

जिनशासन उद्योतकर, स्वानुभूतिमय जिनधर्म प्रभावक,
 निश्चयरत्नत्रय विभूषित, अध्यात्मयोगी, अद्भुत
 ज्ञान-ध्यानमय जीवन व्यतीत करनेवाले गुरुवर्य तारणहार
 पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की १३०वीं मंगल जन्मजयंती प्रसंग पर
 उनके चरणोंमें भावभीगी वंदना



अनेक शताब्दियों के इतिहास को देखा जाये तो ऐसे तीर्थंकर द्रव्य का उदय हो और इतने-इतने सालों तक सम्यग्दर्शन जैसे प्रयोजनभूत विषय पर उपदेश चला हो ऐसा इतिहास में ढूँढने पर भी नहीं मिले ऐसा है। जिन्हें ऐसा योग उपकारी हो उन्हें तो अनंत तीर्थंकर से अधिक लगते हैं। जिसे गोली लगे उसके संसार की मृत्यु हो गई। उसको तो अनंत तीर्थंकरों से जो काम नहीं हुआ वह हो गया।

(-पूज्य भाईश्री शशीभाई)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६: अंक-२५८, वर्ष-२४, मई-२०१९

आषाढ शुक्ल १३, गुरुवार, दि. ३०-६-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-६३-६४, प्रवचन-२२

योगसार अर्थात् आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञायकस्वरूप त्रिकाल शुद्ध है, उसके अन्दर एकाग्रता करना, इसका नाम योग कहते हैं। इसमें भी उसका सार। उग्र योग का सार। मुनि की योग्यता का सार विशेष कहते हैं। आत्मा अन्तर शुद्ध भाव से भरपूर पदार्थ है, उसे पुण्य-पाप के भाव से रहित, अपने त्रिकाल स्वभाव में एकाग्र होकर और उसमें श्रद्धा, ज्ञान व रमणता प्रगट करने का नाम योगसार कहा जाता है। इसमें यह ६४ वीं गाथा चलती है।

‘त्यागी आत्मध्यानी महात्मा ही धन्य है।’ जिसने रागादिक छोड़कर आत्मा के स्वरूप को साधा है, शुद्ध चिदानन्द-सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा का उसने साधकपने साधन करके साधा है — ऐसे धर्मात्मा को कहते हैं कि धन्य है। वह पैसेवाला हो या धूल का स्वामी हो, उसे धन्य नहीं है — ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु :- वह तो दान दे, तब धन्य कहलाता है।

उत्तर :- तब भी धन्य नहीं है। धूल में दान दे तो क्या वहाँ? ऐ...ई... रमणीकभाई! यहाँ पचास लाख हों, उसमें पाँच हजार-दस हजार दे, उसमें क्या धन्य कहलाये? पचास लाख दे तो भी धन्य नहीं है। शुभभाव होवे, राग की मन्दता करे तो शुभभाव हो, वह कहीं आत्मा को धन्य कर दे और आत्मा लक्ष्मी का दान दे, यह है नहीं, हाँ! ऐ...ई... भाई! ऐसा होना मुश्किल... पचास लाख में दस लाख

खर्च करना भी मुश्किल है — ऐसा कहते हैं.... परन्तु ऐसा भी निकले, लो न! परन्तु उसमें क्या है अब? वह कोई धन्य चीज नहीं है।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द की लक्ष्मी सम्पन्न प्रभु (है)। आत्मा में — अन्दर में शुद्ध आनन्द, ज्ञानादि लक्ष्मी अन्दर में पड़ी है, उसमें अन्तर योग अर्थात् जुड़ान करके शुद्धता के निर्मल भाव प्रगट करे, उसे लक्ष्मी और उसे धन्य कहा जाता है। कहो, समझ में आया? यहाँ आया न? **‘धण्णा ते भयवंतं बुह जे परभाव चयंति’** वह ज्ञानी धन्य है कि जो परभाव अर्थात् पुण्य-पाप का विकार-मैल है, उसे छोड़ता है और **‘लोगालोय-पयासयरु अप्पा’** आत्मा कैसा है? कि लोकालोक का प्रकाशक है। यहाँ तो आत्मा की व्याख्या ही ऐसी की है। भगवान आत्मा, लोक-चौदह ब्रह्माण्ड और अलोक-खाली, उसका वह प्रकाशक है। ऐसे प्रकाशक आत्मा को निर्मलरूप से निर्मल अनुभव करता है। भगवान आत्मा निर्मल है, शुद्ध है, पवित्र है — ऐसा जो अन्तर में स्वभावसन्मुख होकर; विभावविमुख होकर आत्मा का अनुभव करता है, उसे यहाँ धन्य कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

भावार्थ :- **‘आत्मा का स्वरूप निश्चय से परम शुद्ध है, ज्ञान उसका मुख्य असाधारण लक्षण है।’** लोकालोक प्रकाशक कहा है न? ज्ञान,

यह तो इसका लोकालोक प्रकाश का इसका मुख्य लक्षण है, यह ज्ञान असाधारण लक्षण है, लो! समझ में आया? ज्ञान में शक्ति है कि एक समय में सर्व लोक-तीन काल-तीन लोक जान सके-ऐसा भगवान आत्मा में असाधारण, दूसरों में न हो ऐसा; दूसरों में न हो और दूसरे गुणों में न हो ऐसा — ऐसा आत्मा का ज्ञानस्वभाव, उसे अन्तर में अनुभव करे, उसमें एकाकार होकर आनन्दसहित उस ज्ञान का अनुभव करे, उसे धन्य कहा जाता है। वह प्रशंसनीय है, वह हितकर साधन करता है, सन्तों को भी वह प्रशंस अर्थात् सम्मत होता है-ऐसा कहते हैं।

‘स्वभाव से आत्मा सिद्ध समान है। तत्त्वज्ञानी महात्मा जो पद प्राप्त करने की रुचि धरते हैं, उसी पद का ध्यान करते हैं।’ भगवान आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को रुचि से साधता है, तो वह उसकी रुचिवाला हो जाता है। तब **‘वह समस्त परपदार्थों से विरक्त हो जाता है।’**

भगवान आत्मा की आनन्द की परम सम्पत्ति साधते हुए जगत् के दूसरे पदार्थों के प्रति उसे उदासीनता-वैराग्य हो जाता है। **‘पुण्योदय से प्राप्त होनेवाले...’** कदाचित् पुण्य के कारण से **‘नारायण...’** वासुदेव की पदवी **‘बलभद्र, प्रतिनारायण, चक्रवर्ती, कामदेव, इन्द्र, धरणेन्द्र, अहमिन्द्र आदि पदों को कर्मजनित नाशवन्त आत्मा के शुद्ध स्वरूप से बाह्य जानकर उन सबकी महिमा छोड़ता है...’** भगवान आत्मा, अपना परमानन्दस्वभाव अनादि-अनन्त पड़ा है, उसे साधते हुए बड़ी पदवियों की ममता भी छोड़ देता है। आत्मपद निजानन्द का पद, उसे साधते हुए वासुदेव, बलदेव आदि इन्द्रपद को

भी नहीं गिनता है, कहो समझ में आया?

‘इसी प्रकार जिन शुभभावों से लौकिक उच्च पदों की प्राप्ति योग्य पुण्य का बंध होता है...’ लौकिक में सेठपना मिले या बड़े-बड़े पद मिलें। पचास-पचास हजार का वेतन मिले **‘उन्हें भी नहीं चाहता।’** दुनिया की लौकिक बड़ी पदवी भी वह नहीं चाहता। लोकोत्तर चैतन्य भगवान आत्मा की रुचिवाला, वह अपने निजपद की पूर्णता के पद को चाहता है, दूसरी चाहना धर्मी को नहीं होती है। आहा...हा...!



‘धर्मानुराग, पंच परमेष्ठी की भक्ति...’ पंच परमेष्ठी की भक्ति **‘अनुकम्पा, परोपकार, शास्त्र पठन आदि शुभभावों में वर्तता है...’** इन शुभभावों में वर्तता है, फिर भी उनका आदर नहीं करता। **‘क्योंकि शुद्धोपयोग में अधिक नहीं स्थिर हो सकता।’** शुद्ध में स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए ऐसे शुभभाव

में आता है, तथापि उसके फल का और उसके भाव का वह आदर नहीं करता है। कहो, समझ में आया?

‘एक शुद्धोपयोग को ग्रहण करने का उत्सुक होकर धर्म प्रचार के विचार भी छोड़ता है।’ क्या कहते हैं? भगवान आत्मा शुद्ध पूर्णानन्द का नाथ प्रभु को अन्तर्मुख में साधन की उग्रता साधते हुए जो धर्म प्रचार का विचार भी रोक देता है। धर्म प्रचार का विकल्प भी आत्मा को क्या लाभ करता है? कहो, भाई! क्या कहा? धर्म प्रचार होवे ऐसे विकल्प से आत्मा को क्या लाभ है?

मुमुक्षु :- धर्म प्रचार का विकल्प करे तो सुखी

होता है।

उत्तर :- कौन होता है? यह धर्म करे तो इसे हो, इसमें उसे क्या? विकल्प उठता है — ऐसा कहते हैं। धर्म प्रचार का भी विकल्प है, वह विकल्प भी छोड़ने योग्य है।

मुमुक्षु :- कब?

उत्तर :- अभी.... कब क्या? समझ में आया? ऐ... रतिभाई! यह कैसे बढ़ाने का विकल्प तो छोड़ दे परन्तु धर्म प्रचार का विकल्प छोड़ दे — ऐसा कहते हैं। ठीक! आत्मा को.... नित्य प्रभु आत्मा, ध्रुव अनादि-अनन्त आत्मस्वरूप के साधन में जुड़ने से धर्म के प्रचार का विकल्प भी जिसे नहीं होता क्योंकि उस विकल्प से पुण्य बँधता है, आत्मा को कुछ लाभ नहीं है। दूसरा समझे तो उससे उसे कुछ लाभ है, इसका लाभ वहाँ नहीं होता है। आहा...हा...! दूसरे थोड़ा धर्म पावें तो इसका कुछ ब्याज मिलता होगा या नहीं, धर्म प्राप्त करानेवाले को? पर (जीव) समझें वे तो उनके कारण से समझते हैं। उसमें इसका लाभ यहाँ कहाँ से आया? स्वयं अपना शुद्ध स्वरूप में जितनी दृष्टि और एकाग्रता करे, उसका लाभ इसे है, बाकी कुछ है नहीं। आहा...हा...! कहो, ज्ञानचन्दजी! यह तो कहते हैं (कि) धर्म प्रचार का विकल्प भी बंध का कारण है। वीतरागस्वरूप परमात्मा आत्मा है, शुद्ध चिदानन्द महाराजा आत्मा है। उसके अन्तर साधन में इस विकल्प का क्या काम है? कहते हैं। समझ में आया?

‘सात तत्त्व है, नौ पदार्थ है — इत्यादि सर्व विकल्पों को बंध करनेवाला जानकार छोड़ देता है।’ थोड़ा-थोड़ा अर्थ लेते हैं, (दूसरा) तो लम्बा बहुत किया है। समझ में आया? **‘इस प्रकार जो ज्ञानी और विरक्त पुरुष संसार के सर्व प्रपंचों से पूर्ण विरक्त होकर आत्मध्यान करता है...’** अपने आत्मा का... दुनिया, दुनिया के घर रही। कहो, समझ में आया? दुनिया समझे तो उसे लाभ, न समझे तो उसे नुकसान। वह आत्मा समझे

तो यहाँ थोड़ा-बहुत मिले — ऐसा है नहीं। ऐसा होगा या नहीं? रतिभाई!

मुमुक्षु :- अभी तक मिलता था।

उत्तर :- अभी तक मिलता था, कहते हैं। दूसरे में से कुछ मिलता होगा या नहीं? धूल भी नहीं मिलता। कदाचित् ऐसा विकल्प होवे तो अन्दर पुण्य बँधे परन्तु वह तो बँधता है न? उसमें अबन्धपरिणाम कहाँ आये? आहा...हा...! समझ में आया?

‘परमानन्द के अमृत का पान करता है...’

धर्मात्मा अकेला आत्मा में परम आनन्दस्वरूप को पीता है, अन्तर सुधारस को पीता है, उसे यहाँ धन्य कहा जाता है। वह प्रशंसनीय है। समझ में आया? धर्म प्रचार का विकल्प है, इसलिए वह प्रशंसनीय है, ओ...हो...हो...! तुमने बहुत अच्छा किया... कि नहीं, वह प्रशंसनीय है ही नहीं। कठिन बात भाई वीतरागमार्ग की! ऐ... रतिभाई! है? अब तो बना दिया है, कहते हैं।

मुमुक्षु :- एक धर्मशाला बाकी है।

उत्तर :- वह भी होने आयी है। कौन जाने.... वहाँ तो सब गृहस्थ लोग हैं, यहाँ तो मानस्तम्भ बनाया, समवसरण बनाया, मन्दिर बनाया, हॉल बनाया, अब धर्मशाला (बनायी)। अभी यहाँ आये थे न? दीपचन्दजी - तुम्हारे यहाँ आये थे, प्रसन्न हो गये। राजकोट के सेठ हैं, उन्होंने (दान में) एक लाख रुपये निकाले हैं, मानस्तम्भ के लिए... धूल में लाख निकाले, उसमें क्या हो गया....? दो लड़कों के लिए कैसे पचास लाख-पचास लाख (निकालकर) दो भाग कर देते हैं? ऐ... भाई! कहो समझ में आया? आहा...हा...!

भाई! यहाँ तो कहते हैं, जहाँ आत्मा के स्वभाव में भी स्थिर न रह सके और धर्म प्रचार का विकल्प आता है, वह भी बन्ध का कारण है। आत्मा को लाभदायक नहीं है। आहा...हा...! ऐसा वीतरागमार्ग है। विकल्परहित निर्विकल्प चैतन्य का साधन, वह

स्वयं कर सकता है, इसमें किसी बाह्य पढ़ाई की आवश्यकता नहीं है और बाहरवालों को पढ़ाने की आवश्यकता नहीं है तथा दूसरों से पढ़ने की भी इसमें आवश्यकता नहीं है। ऐ... भाई! आहा...हा...!

‘वही महाविवेकी पण्डित है...’ लो! जो कोई आत्मा आनन्दस्वरूप आत्मा, सच्चिदानन्द प्रभु है, सत्, शाश्वत् आनन्द अतीन्द्रिय है, उसे जो अन्दर में एकाग्र होकर निर्विकल्परूप से वेदन करे, उसे विवेकी पण्डित, बड़ा विवेकी पण्डित (कहते) हैं। समझ में आया? **‘वही परम ऐश्वर्यवान है...’** आहा...हा...! लो भाई! यह सब पैसेवाले बड़े ऐश्वर्यवान् ऐसा नहीं। बड़ी पचास-पचास हजार, लाख-लाख, दो-दो लाख की बड़ी पदवी मिली हो, बारह महीने में पाँच लाख आमदनी करता है, दस लाख कमाता है, क्या हुआ ईश्वर....? यह तो....

मुमुक्षु :- यह पैसे का ईश्वर, यह आत्मा का ईश्वर।

उत्तर :- पैसे का ईश्वर कब था? मूढ़ है, जड़ का ईश्वर कोई होगा? अभिमान करे, वह अभिमान करता है। हम पैसेवाले हैं, पैसेवाले हैं, धूलवाले हैं।

यह ईश्वर तो उसे कहते हैं, भगवान आत्मा शान्तरस का भण्डार अन्दर पड़ा है, शान्ति से... शान्ति से... शान्ति से.... शान्ति का वेदन करे, आहा...हा...! एक तरफ कौने में बैठकर, किसी को पता नहीं पड़े-ऐसा आत्मा का अन्दर शुद्ध चिदानन्दस्वरूप की अन्तर दृष्टि करके साधन करे, वह परम ऐश्वर्यवान है, वह बड़ा ऐश्वर्यवान है, वह बड़ा अधिक है। आहा...हा...! पुण्य बड़ा अधिक करे और पुण्य का बड़ा फल बाहर में मिले, वह बड़ा नहीं है। आहा...हा...!

‘रत्नत्रय से अपूर्व सम्पत्ति का स्वामी है...’ एक शब्द डाला है। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्धभाव का भण्डार, उसकी अन्तर में अनुभवपूर्वक प्रतीति और उसमें रमणता (होना), वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय का स्वामी है, वह इस रत्नत्रय का स्वामी है। आहा...हा...! समझ में आया? पुण्य का मालिक

और धूल का मालिक और.... सब भटकने का मालिक है-ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- अभी तो सुख लगता है।

उत्तर :- कहाँ सुख था? धूल में। सब होली सुलगती है।

मुमुक्षु :- किसी को छोटी होली हो....

उत्तर :- दूसरे को बड़ी होती है। बड़े पैसेवाले को बड़ी होती है। हर्ष आवे, नहीं, यह करना है और यह करना है और यह करना है.... पाँच लाख यहाँ डालना है, दस लाख यहाँ डालना है, पच्चीस लाख यहाँ डालना है, पाँच करोड़-दस करोड़ डालना कहाँ? कहो? एक फिल्म में डालना, फिर उसमें थोड़ा डालना, फिर थोड़ा मकान बनाना, फिर थोड़ा दीवार चिनाने में डालना।

मुमुक्षु :- अब पैसेवालों को करना क्या?

उत्तर :- पैसेवाले को ममता छोड़ना। (आत्मा) पैसेवाला था कब? पैसे इसके पिता के हैं? इसके हैं? वह तो धूल के हैं। यह तो चैतन्य लक्ष्मीवाला आत्मा है।

अन्दर केवलज्ञान-महाभण्डार पड़ा है। उसे अनुभवे, वह तीन रत्न का स्वामी है। यह अपूर्व रत्न, देखो! रत्नत्रय की अपूर्व सम्पदा का स्वामी **‘सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता में लवलीन है।’** अपने स्वरूप में श्रद्धासहित, ज्ञानसहित लीनता होना, वही सच्ची उत्कृष्ट बात है। **‘वही भाग्यवान है...’** वही भाग्यवान है। **‘वही भगवान है....’** आहा...हा...! **‘अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख का स्वामी है...’** वह अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख का स्वामी है। **‘वह शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति करेगा।’** वह अल्प काल में केवलज्ञान को प्राप्त करेगा। कहो! यह भगवान आत्मा सच्चिदानन्दप्रभु का जो अन्तर एकाग्र होकर ध्यान करता है, उसे ही यहाँ धन्य कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

फिर आत्मानुशासन का एक दृष्टान्त दिया है, **‘जिन महात्माओं का आभूषण उनके शरीर पर**

चिपटी हुई रज है...' अब मुनि की उत्कृष्ट बात लेते हैं। महात्मा दिगम्बर सन्त आत्मध्यान में इतने मस्त होते हैं कि जिन्हें वस्त्र का धागा भी नहीं होता। आत्मा के आनन्द में अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त हों, उन्हें मुनि कहते हैं। जिन्हें शरीर का गहना क्या? गहना... गहना... इस शरीर में लगी हुई रज। शरीर में रज लगी, वह उनका गहना (है)। पूर्णानन्द का नाथ जिसमें स्वसंवेदन की उग्रता में पड़े हैं - ऐसे सन्तों को रज, वह गहना है। कहते हैं। शरीर में मैल चढा हो और रज पड़े, वह उनका गहना।

'जिनके बैठने का स्थान पाषाण की शिला है...' आहा...हा...! बादशाही करते हैं। शिला पर बैठकर अन्दर में ध्यान (करते हैं)।

मुमुक्षु :- आरामकुर्सी चाहिए न?

उत्तर :- आरामकुर्सी... मर गये, आरामकुर्सी में - ऐसे पड़े वहाँ दरबार मर गये, कृष्णकुमार! ऐ... मुझे यहाँ कुछ होता है, असुख होता है, असुख होता है - ऐसा कहा। रानी को बुलाओ, जहाँ रानी आयी, वहाँ तो ऐसा हो गया.... समाप्त! डाक्टर आये, धूल में क्या हो? आरामकुर्सी... आरामकुर्सी में आराम ले लिया....लो! अन्तिम। आत्मा के भान बिना सब व्यर्थ है।

आत्मज्ञान की लक्ष्मी जिसने प्राप्त की है और उसमें विशेष लीन है, वह तो कहते हैं कि उसके बैठने का स्थान शिला है। **'जिनकी शैय्या कंकड़वाली भूमि है,...**' कंकड़वाली भूमि वह उनकी शैय्या। आहा...हा...! दिगम्बर मुनि वस्त्ररहित,

जंगल में आत्मा के ध्यान में रहते हों.... कंकड़... कंकड़ हों, इतने-इतने कंकड़ (हो) ऐसे चुभते हो, हाँ! वह शैय्या है कहते हैं। उसमें आत्मा के आनन्द में रहते हैं। कहो, समझ में आया? यहाँ मखमल की शैय्या पर सोता हो (परन्तु) दुःखी है (मुनि) आनन्द में है, कहते हैं। आहा...हा...!

'जिनका सुन्दर घर बाघ की गुफा है...' जिसमें बाघ बसते हों, वह सुन्दर घर। बाघ निकल गया हो तो बैठें। अन्दर में लगनी लग गयी है, आनन्द की.... आनन्द की... आनन्द की... आनन्द की.... गिरिगुफा अनुभूति। अनुभूतिरूपी गिरिगुफा में प्रवेश किया है। अन्तर आनन्द के कन्द में अन्दर प्रवेश करना, वही उनकी लक्ष्मी है। कहो, समझ में आया?

'जिन्होंने अपने अन्दर से सर्व विकल्प मिटा दिये हैं और जिन्होंने अज्ञान की गाँठ तोड़ दी है। अज्ञान की गाँठ, ग्रन्थिभेद (करके) तोड़ डाला है।' भगवान आत्मा ज्ञानानन्द का खजाना जिसने खोल दिया है। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द का खजाना, स्वभाव में एकत्व बुद्धि करके खोल दिया है। अज्ञान की गाँठ तोड़ डाली है। राग और आत्मा के स्वभाव की एकता-ऐसा अज्ञान तोड़ डाला है।

'जिनके पास सम्यग्ज्ञानरूपी धन है, जो मुक्ति के प्रेमी हैं, दूसरी समस्त इच्छाओं से दूर हैं, ऐसे योगी हमारा मन पवित्र करो।' लो, मुनि स्वयं भी आत्मानुशासन में कहते हैं, हाँ!

पुनः प्रकाशन एवं नवीन प्रकाशन

पूज्य भाईश्री द्वारा लिखित चिंतन कणिकाओं का पुस्तक 'अनुभव संजीवनी' (गुजराती में) तथा 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' (गुजराती एवं हिन्दी) पुनः प्रकाशित किये गये हैं। जिसकी मुमुक्षु नोंध लें।

श्रीमद् राजचंद्र ग्रन्थ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई के शब्दशः प्रवचन, राज हृदय भाग-१ एवं भाग-२ पूज्य गुरुदेवश्री आगामी जन्म जयंति प्रसंग पर प्रकाशित किये जायेंगे। जिन मुमुक्षु भाई-बहनों को स्वाध्यायार्थ मंगवाने हों, वे नीचे दिये गये मोबाईल पर वोट्स अप करें।

अतीन जैन, मो. ९३६८६८३९९१



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके ५३० वचनामृत पर भाववाही
प्रवचन, दि.४-५-१९८४, प्रवचन
क्रमांक-३१० (विषय : भेदज्ञान)

(आत्मा को) चेतनागुणमय बतलाया है क्योंकि ज्ञान की पर्याय का अंश प्रकट है, अतः चेतनागुणय त्रिकाल है—ऐसा बतलाया है। आनन्द का अंश तो जब स्वभाव का आश्रय ले तब-प्रकट हो; परन्तु चेतन की वर्तमान पर्याय तो अपनी का भी विकसित अंश है; इसीलिये यह कहा हा के पूर्ण भगवान आत्मा चेतनागुणमय है। अन्दर नजर डालते ही चेतना.. चेतना.. चेतना स्वभाव, अनन्त-अपरिमित

स्वभाव (दिखता) है। उस चेतनागुण पर द-ष्टि डालने पर राग से भिन्न पड़ना—वही उसके प्रकट होने का साधन है। ५३०.

प्रवचनसार—१७२ गाथा का प्रवचन है। ... इस गाथा की टीका में एक शब्द के बीस अर्थ किये हैं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने अलिंगग्रहण नाम के एक शब्द के बीस बोल किये हैं। उसमें चेतनागुणमय आत्मा है ऐसा लिया है। नास्ति से और अस्ति से आत्मा का स्वरूप दर्शाते हुए इस गाथा में आत्मा को चेतनागुणमय (कहा है)। यह गाथा कुन्दकुन्दाचार्य देव के चारों शास्त्र में है और धवल शास्त्र में भी है। पाँच जगह है। शब्दशः, अक्षरशः यह गाथा है।

यहाँ एक बहुत अच्छी बात कही है। '(आत्मा को) चेतनागुणमय बतलाया है क्योंकि ज्ञान की पर्याय का अंश प्रकट है, ...' आत्मा को चेतनागुणमय बतलाया है क्योंकि ज्ञान की पर्याय का अंश प्रकट है। क्या कहा है? ज्ञान की पर्याय का अंश प्रकट है, वह 'अ' कहने से प्रकट है। वैसे तो प्रत्येक द्रव्य के सर्व गुण परिणमते हैं। अतः सर्व गुणों के अंश तो ... परन्तु भूतार्थ की ...जीव के परिणमन की विकारी ...प्रत्येक पर्याय में गुण

अर्थात् स्वभाव कैसा है वह समझ में आ जायेगा।

जब चेतनागुण है कि जिस चेतनागुण की, ज्ञान और दर्शन की ऐसी दो पर्याय है, उसमें ज्ञान की पर्याय का अंश प्रकट है। ... प्रकट है। समझ में आये उस प्रकार से प्रकट है। अनुभव गोचर हो उस प्रकार से प्रकट है। सिर्फ समझ में आये ऐसे नहीं। परन्तु ज्ञान स्वयं को ज्ञानपने अनुभव में आये, ऐसा अनुभव गोचर हो उस प्रकार से वह प्रकट है।

इसलिये २४६ कलश के अर्थ में पण्डित जयचंद्रजी ने ... किया है। ज्ञान प्रकट है, साकार है और अनुभव गोचर है। साकार है अर्थात् उसका स्वरूप स्वरूपाकृति ज्ञान में समझ में आये ऐसी है, भास्यमान हो ऐसी है कि ऐसा स्वभाव है। और वह वेदन से अनुभव गोचर भी हो सके ऐसा है। '(आत्मा को) चेतनागुणमय बतलाया है क्योंकि ज्ञान की पर्याय का अंश प्रकट है, ...' ज्ञान की पर्याय का अंश जैसा ज्ञानस्वभाव है, वैसा ही प्रकट है।

मुमुक्षु :- ज्ञानी को न?

पूज्य भाईश्री :— ज्ञानी नहीं, कोई भी जो पहिचानना चाहे, निज स्वरूप की खोज करने वाला कोई भी जीव समझ सकता है। कौन नहीं समझ सकता? कि जिसे अपने शुद्ध स्वरूप की खोज नहीं करनी नहीं है, वह नहीं समझ सकता। परन्तु जिसे अपना स्वरूप कैसा है ऐसी अंतर जिज्ञासा हुई है, उसको यह चेतनागुणपना ज्ञान अंश में चेतनास्वभाव उसको प्रथम ख्याल में आता है। विकल्पात्मक दशा में प्रथम उसको समझ में आता है, समझ में आता है इसलिये स्वभाव का निश्चय होता है और निश्चय होने पर निश्चयबल से आगे बढ़कर अनुभवगोचर हो वहाँ तक वह पहुँचता है।

मुमुक्षु :— है अज्ञानी।

पूज्य भाईश्री :— अज्ञानी में से ज्ञानी अनन्त जीव हुए। अज्ञानी है इसलिये कोई जीव नित्य अज्ञानी है, ऐसा मानने पर पर्याय को नित्य माननी पड़ेगी, कि जो स्वभाव से अनित्य है। पर्याय स्वयं ही स्वभाव से अनित्य होने पर भी, यदि मैं अज्ञानी हूँ वैसा नित्य अज्ञानी हूँ ऐसा मानने में आये तो उसने पर्याय को नित्य मान ली। वह तो पलटनेवाली दशा है। अज्ञान पलटकर अनन्त को ज्ञान हुआ। तो अपना न हो वह प्रश्न नहीं रहता है। अथवा जिसको अज्ञानपना है, वर्तमान अवस्था में आत्मज्ञान नहीं है तो उसको उस अज्ञान का ज्ञान कैसे हुआ है? कि यह अज्ञानपना कैसे मिटे ऐसे दृष्टिकोण पूर्वक उसको वह अज्ञान समझ में आया है? कि यह अज्ञान है इसलिये अब इसमें ज्ञान कैसे हो सकता है? अपने को तो अज्ञान ही रहा है, अब ज्ञान कहाँ-से होगा? इसमें तो अज्ञान है, अभी तो अपने को अज्ञान है, अपने को तो अभी अज्ञान है। आत्मा तो ज्ञानियों को समझ में आता है, अज्ञानियों को कहाँ-से समझ में आये? अपने ठहरे अज्ञानी। इस प्रकार अज्ञान को नित्य मानकर सर पर ओढ़ लिया है कि जिससे अज्ञान न मिटे? किस दृष्टिकोण से अज्ञान को जाना है? वह भी विचारणीय है।

कहते हैं, ‘(आत्मा को) चेतनागुणमय

बतलाया है...’ बतलाया है अर्थात् कहा है, कहा है अर्थात् दूसरी सब बातों को उभराया है कि आत्मा चैतन्यगुणमय है, चैतन्यस्वभावमय है। उसके कारण में ऐसा कहें कि उसको ज्ञान की पर्याय का अंश वहाँ प्रगट है। अविकारपने प्रगट है।

मुमुक्षु :— अविकारपने?

पूज्य भाईश्री :— अविकारपने प्रगट है।

ज्ञान की प्रगट पर्याय का अंश जैसा ज्ञानस्वभाव है, वैसा प्रगट व्यक्तपने स्वानुभवगोचर हो उस तरह, समझ में आये उस प्रकार से प्रगट है। इसलिये उसको उस सम्बन्धित कोई अनुमान करना पड़े कि द्रव्यस्वभाव ऐसा होगा, ऐसा होगा, ऐसा होगा वह बात भी उसको नहीं रहती है। मात्र कल्पना और अनुमान का विषय न करना पड़े और प्रत्यक्ष अंश पर से पूरा अंशी द्रव्य स्वभाव ऐसा है, ऐसा बराबर समझ में आये और निर्णय हो, कल्पित निर्णय न हो यह बात यहाँ है।

अपने निर्भ्रान्त दर्शन की पगडण्डी में यह बात ली है कि कल्पित निर्णय होता है। शास्त्र पढ़ने के बाद कल्पित निर्णय होता है, वहाँ वह निर्णय ज्ञानस्वभाव के अंश के आधार से नहीं किया है। अप्रगट अंशी का निर्णय हो जाना चाहिये। ऐसा होने के बजाय मात्र कल्पना और अनुमान कर लिया, ऐसा निर्णय किया वह निर्णय निर्णयबल को उत्पन्न करने वाला नहीं होने से, पुरुषार्थ के अभावपने परिणामन ज्यों का त्यों रहता है। पुरुषार्थ का सद्भाव निर्णय होने के बाद जो उत्पन्न हो जाना चाहिये वह उत्पन्न नहीं होता है। इसलिये सहज पुरुषार्थ की उत्पत्ति चैतन्यवीर्य की स्फुरणा के लक्षण युक्त होती है। वह बात वहाँ ली हि के चैतन्यवीर्य की स्फुरणा का लक्षण वाल वह निर्णय होता है। यदि पुरुषार्थ की उत्पत्ति न हो तो वहाँ निर्णय अभी यथार्थ नहीं हुआ है अथवा कल्पित हुआ है, ऐसा समझना चाहिये।

मुमुक्षु :— इसमें शुद्ध अंश में स्फटिक का दृष्टान्त ले सकते हैं?

पूज्य भाईश्री :— हाँ। स्फटिक का ले सकते

हैं, दर्पणा का भी ले सकते हैं। दर्पणा का ज्यादा स्पष्ट बैठता है। क्योंकि स्फटिक के अन्दर तो आरपारपना ज्यादा है। जब कि इसमें सीधा प्रतिबिंब उठता है, ज्ञान में जैसे प्रतिबिंब उठता है वैसे दर्पण में।

मुमुक्षु :— उस समय शुद्ध अंश है।

पूज्य भाईश्री :— उस समय भी उसकी जो मूल अवस्था है, प्रतिबिंब बिंब रहित जो अवस्था है वह यदि न हो तो प्रतिबिंब उठे कैसे? तो स्लेट में भी प्रतिबिंब उठना चाहिये। चार लकड़ी के फ्रेम से, चार टुकड़ों से बनायी स्लेट का भी टुकड़ा है और दर्पणा का टुकड़ा है। दर्पण में प्रतिबिंब उठता है, क्योंकि दर्पण का सतह ऐसा है कि जिसमें बिंब का प्रतिबिंब उठने योग्य है। उस स्लेट में वह परिस्थिति नहीं है कि सामने कोई पदार्थ आये उसका प्रतिबिंब उठे। तो मूल अवस्था है तो प्रतिबिंब है। अकेले प्रतिबिंब को देखने वाला मूल अवस्था को नहीं देखता है। मूल अवस्था को देखने वाला प्रतिबिंब को गौण करता है। ज्ञात होता है फिर भी गौण करता है।

मुमुक्षु :— मूल अवस्था को कैसे देखना?

पूज्य भाईश्री :— मूल अवस्था ज्ञ.. ज्ञ.. ज्ञ.. ज्ञाने सामान्य ज्ञान है, वह सामान्य उसका मूल स्वरूप है। विशेष का तिरोभाव करके, विशेष ज्ञेयाकारों का व्यवच्छेद करके ज्ञानमात्रपने का आविर्भाव करने पर अथवा ज्ञानमात्रपने मैं हूँ, ऐसे अपनी जाति को— निज अस्तित्व को ग्रहण करके भावान्वित होने पर वह ज्ञात होता है कि मैं ऐसा स्वभावी हूँ। उसमें मात्र पर्याय का भी अवधारण नहीं रहता है। ऐसा स्वभाव है ऐसा वहाँ ज्ञात होता है। भले प्रगट अंश पर से जानना होता है, अनित्य अंश पर से जानना होता है तो भी वह अनित्य अंश नित्य को दर्शाता है।

सोगानीजी चर्चा में कहते थे, इसमें नहीं लिया है, एक बात कही थी कि ज्ञान की एक समय की पर्याय ध्रुव को दर्शाती हुई चली जाती है। मेरी एक समय की ज्ञान की पर्याय आती है और जाती है, वह आने के साथ ही एक समय में चली जाती है, परन्तु ध्रुव को दर्शाती हुई चली जाती है। ऐसा कहा। वह ध्रुव को प्रदर्शित करती है। स्वभाव को

प्रदर्शित करने वाली ज्ञान की पर्याय है। अच्छी तरह दिखाने वाली है, विशेषपने वह दिखाने वाली है।

‘अतः चेतनागुणमय त्रिकाल है—ऐसा बतलाया है।’ ज्ञान की पर्याय का अंश प्रगट है इसलिये, उस कारण से। दोनों में कारण-कारण लिया। ‘चेतनागुणमय त्रिकाल है—ऐसा बतलाया है। आनन्द का अंश तो जब स्वभाव का आश्रय ले तब प्रकट हो;...’ आनन्द कब प्रगट होता है? कि ऐसे स्वभाव का आश्रय हो कि मैं ऐसा हूँ, ऐसा यदि आश्रय प्रगट हो, आश्रय हो तो आनन्द आये और आनन्द प्रगट हो। अन्यथा आनन्दगुण की अवस्था दुःखरूप प्रगट है। उस में से उसको स्वभाव का पता नहीं लगता। ऐसा कहना है। क्योंकि ज्ञान जैसे आत्मा का—जीव का विशिष्ट गुण है, कि जो पाँचों द्रव्य में नहीं है, वैसे ही आनन्द भी आत्मा का विशिष्ट गुण है कि जो बाकी के पाँच द्रव्य में नहीं है। फिर भी ज्ञान से आत्मा की पहिचान होता है, आनन्द से क्यों नहीं? क्योंकि आनन्द का अंश प्रगट नहीं है इसलिये नहीं। आनन्द प्रगट हो तो उस पर से स्वभाव समझ में आये न। आनन्द के बदले तो दुःख प्रगट है। वह तो विकार है और पहिचानना है स्वभाव को। विकार से भिन्न, विकार से विरुद्ध जाति के स्वभाव को पहिचानना है।

मुमुक्षु :— चेतनागुणमय त्रिकाल लिया, मतलब सदृश्यता की अपेक्षा से लिया?

पूज्य भाईश्री :— हाँ, सदृश्यता की अपेक्षा से लिया। गुण अर्थात् त्रिकाल स्वभाव प्रगट है ऐसा कहना है। तीनों काल प्रगट है। निगोद से लेकर सिद्ध पर्यंत की समस्त अवस्थाओं में ज्ञानगुण का परिणमन है वह अविकारपने चालू ही चालू रहता है। कुछ परिणमन विभाविक्त होता है, जब पर सन्मुख होता है, परज्ञेय ज्ञात होने पर पर सन्मुख होता है, परज्ञेय ज्ञात होने पर पर में तन्मयता धारण करता है, तब उसको ज्ञान का विभाव है तो भी स्वभाव को रखकर विभाव है, सामान्य अंश का नाश होकर नहीं है। वहाँ सामान्य अंश आच्छादित होता है। स्वभाव अंश आवरित हुआ होने से उसको समझ

में नहीं आता है। वहाँ तिरोभूत हो जाता है। सदृश्यपना है अथवा सामान्य ज्ञान है वह, प्रतिबिंब को मात्र प्रतिबिंब को देखने वाले को आच्छादित रहता है, परन्तु है सही, नहीं है ऐसा नहीं। है उसको आच्छादित हुआ है ऐसा कहा है। नहीं हो, उसको आच्छादित कहने का प्रश्न नहीं रहता है।

मुमुक्षु :— सामान्य ध्रुव एक आपने लिया और एक सामान्य ध्रुव अंश लिया।

पूज्य भाईश्री :— दोनों सदृश्य है। जैसा ध्रुव है ऐसा ही होने से इसको भी सामान्य कहने में आता है। परन्तु कायम है, सर्व जीवों को कायम है। नहीं तो तिर्यच कहाँ से प्राप्त करेगा? तिर्यच को तो विचारशक्ति कुंठित हो गयी है। मनवाले तिर्यच को भी विचारशक्ति बहुत कुंठित हो गयी है। फिर भी इतनी कुंठित हुई अवस्था में भी अपने प्रयोजन का अर्थात् सुख-दुःख का प्रयोजनभूत रीति से ज्ञान होता होने से, वह अपने ज्ञानस्वभाव पर से सुखस्वभाव को भी पकड़ लेता है, आनन्दस्वभाव को भी वह पकड़ लेता है। क्योंकि वह उसका रूप है। ज्ञान का रूप आनन्द है। ज्ञान सदाय आनन्दरूप है। अतः एक गुण को अनन्त गुण का रूप होने से एक ज्ञानांश पर से अनन्त गुण का रूप आत्मद्रव्य को भी वहाँ से पहिचानने में आता है। क्या कहा?

मुमुक्षु :— इस शुद्ध पर से आत्मा में जाना?

पूज्य भाईश्री :— शुद्ध अंश पर से आत्मा को पहिचानना अथवा ग्रहण करना। ग्रहण करने का भी वह साधन है। पहिचानने का जो साधन है वही ग्रहण करने का साधन है और इसके अतिरिक्त दूसरा कोई साधन है नहीं। इसीलिये समयसार में—पूरे समयसार में दृष्टप्रधान ग्रन्थ होने पर भी ज्ञानमात्र, ज्ञानमात्र, ज्ञानमात्र आत्मा को कहने में आया है। प्रवचनसार शास्त्र तो ज्ञानप्रधान ही है। प्रवचनसार शास्त्र तो ज्ञानप्रधान है। परन्तु समयसार शास्त्र दर्शनप्रधान—श्रद्धाप्रधान होने पर भी वहाँ आत्मा का निर्देश तो ज्ञानमात्रपने ही करने में आया है, उसका यह कारण है।

देखा! **‘आनन्द का अंश तो जब स्वभाव का आश्रय ले तब-प्रकट हो;...’** अभी किसी

को आनन्द नहीं है, आत्मा का आनन्द किसीको नहीं है। कोई ऐसा कहे कि हमें बाहर में सब अनुकूलता हो जाये, इच्छानुसार सब पदार्थ प्राप्त हो जाये तब हमे बहुत आनन्द होता है। ऐसे अच्छे प्रसंग में हमें आनन्द का पार न रहे उतना आनन्द होता है। कहते हैं कि वह आनन्द नहीं है, परन्तु भगवान ने तो उसे दुःख कहा है। वह मानता है आनन्द, अनुभव करता है आनन्द जानकर आनन्दित होकर उसको अनुभव करता है, परन्तु वह उसका दुःख है। यदि वह उसका सुख हो तो उसके अन्दर उसको थकान लगकर वहाँ से हटने का मन न हो। परन्तु वह उसको दुःख है।

मुमुक्षु :— तर्क से यह बात बैठती है कि तृप्ति नहीं होती है इसलिये दुःख है।

पूज्य भाईश्री :— वह तो तर्क तब तक है कि जब तक उसको ज्यादा जाँचना नहीं होगा। फिर उसके भाव को जाँचे और ज्ञान के साथ मिलान करे, ज्ञान के साथ मिलान करे तो ज्ञान में कषाय का अभाव है, जब कि ऐसी कहलाती खुशी—आनन्द में कषाय का सद्भाव है, आकुलता का सद्भाव है। वह बात उसको अपने अनुभव को थोड़ी बारीकी से जाँचे तो समझ में आता है। सूक्ष्म अवलोकन करे तो उसको समझ में आता है कि यह तर्क है वह अनुभव में आता है, तर्क समझ में आता है और तर्क अनुभव गोचर होता है। इसलिये यह बात बराबर है। अपने अनुभव से समझ में आये ऐसी बात है। क्योंकि दुःख और सुख अनुभव का विषय है।

यदि ऐसा कहा कि तेरा आनन्द भी दुःख है और आनन्द नहीं है, सुख नहीं है तो सुख और दुःख तो अनुभव का विषय है। तो फिर उसके ज्ञान में क्यों धोखा हुआ, यह बात उसको जाँचनी चाहिये। बहुभाग तो जीवों का वर्तमान परिणामन पूर्वग्रह पूर्वक का होता है। पहले से उसने जो निर्णय कर लिया हो कि इसको सुख के साधन गिनना, यह दुःख के साधन गिनना, फिर वह दुःखरूप साबित हो तो भी स्वीकार नहीं करता। पूर्वग्रह ऐसी बुरी चीज है।

आप को तर्क दिया कि आप उसमें थक जाते हो। आप के इष्ट, खुशी—आनन्द के विषय में आप थक जाते हो। तो थकते हो उस वक्त तो जाँच करो। तर्क को भले ही आप तर्क गिनकर एक ओर रख दो, किंमत कम करो, परन्तु थक जाते हो वह तो अनुभव में आता है न? तब उस तर्क की अनुभव से सिद्धि हुई या नहीं? या वह केवल एक तर्क रहा? विचार के समय भले वह केवल एक तर्क हो। परन्तु अनुभव के समय केवल तर्क कहाँ रहा? अनुभव के समय तो उस तर्क की सिद्धि हुई है। तो उस वक्त भी अवगणना करते हो कि नहीं, यह दुःख नहीं है या सुख है, उसका विचार नहीं करते हो, उस तर्क को स्पष्ट नहीं करते हो, उसका कारण क्या है विचार करो। उसका कारण यह है कि पूर्वग्रह से वह सुख का कारण है ऐसा ग्रहण हो गया है। पूर्व में ग्रहण किया है उस रीति से कि यह सुख का साधन है, यह सुख का निमित्त है, सुख का कारण है। मेरा सुख यहाँ है। तो उसको दुःख का अनुभव होने पर भी, तर्क सिद्ध होने पर भी उसका अनुभव का वह उल्लंघन करता है, या नहीं करता है? यह है कि नहीं? पूर्वग्रह ऐसी बुरी चीज है कि उसके वर्तमान स्पष्ट अनुभव को भी वह गिनता नहीं। दूसरे को तो गिनने का सवाल ही नहीं। भगवान के या गुरु का या शास्त्र के उपदेश को गिनने का सवाल नहीं रहता है।

कोई ऐसा कहे कि हम ऐसा उपदेश सुनते हैं, फिर भी हम को जो परिणाम चाहिये, वह परिणाम नहीं आता है, उसका कारण क्या है? तू उसको गिनता नहीं है वह। तेरा पूर्वग्रह छोड़ता नहीं है वह। सीधी बात है। उस उपदेश का उल्लंघन करता है यह तुझे मालूम नहीं है और इच्छा ऐसी करता है कि मुझे उपदेश अनुसार क्यों परिणाम नहीं आता है? लंब समय से सुनता हूँ। परन्तु जितने समय से तू सुनता है उतने ही समय से साथ-साथ उल्लंघन करता है। इसलिये उसका अर्थ यह है कि तू सुनता है, फिर भी नहीं सुनता है, कान-से निकाल देता है। यह बात सिद्ध होती है।

इसलिये आत्मार्थी जीव प्रथम ही विचार ज्ञान की मध्यस्थता का करता है। आत्मार्थी जीव के विचार और मंथन का यह मुख्य पासा है, मुख्य पहलू है। सब बातों का विचार मध्यस्थता से करता है। इतनी हद तक कि जो प्रगटपने विरोध करने वाला हो उसकी बात में भी वजूद कितना है, उसकी बात में सत्यता कितनी है वह बात वह निष्पक्षपने विचारने को तैयार होता है। उसका ज्ञान उस तरह विचारता ही होता है।

गुरुदेव के समय में पहले विरोध अखबार बहुत आते थे। अभी भी जो लिखने वाले हैं वे तो लिखते ही हैं। उस वक्त वे स्वयं पढ़ते थे। पढ़कर उसमें से कई बार चर्चा करते थे कि उसकी बात क्यों असत्य है? उसके पीछे उसका पूर्वग्रह क्या है? उसको ऐसा क्या समझ में आया है, ग्रहण किया है, पकड़ लिया है कि जिस कारण से वह ऐसा कहता है। वह पकड़ा है वह सत्य है या असत्य है? यथार्थ है या अयथार्थ है? एक निमित्तमात्र दृष्टान्त बनाकर उसकी चर्चा करे। वह विरोधी है उस तरह चर्चा नहीं करते थे। उसको दृष्टान्त बनाकर चर्चा करते थे कि देखो, ऐसी भूल अज्ञान में होती है। इस प्रकार चर्चा करते थे। नाम को गौण कर दे। मुद्दा लेते थे। इस प्रकार मध्यस्थ होकर कोई भी विषय को, कोई भी बाबत को जाँचने का प्रथम से ही ज्ञानी होने पूर्व वह प्रेक्टिस शुरू की होती है। ज्ञानी तो बाद में होते हैं।

सम्यग्ज्ञान का तो मध्यस्थ रहने का स्वभाव है। परन्तु आत्मार्थी हो और ज्ञानी हो उसके पहले भी उसको इस प्रकार से बात को मध्यस्थ होकर जाँचने की एक प्रक्रिया, उस प्रकार का झुकाव, ज्ञान का उस प्रकार का झुकाव खड़ा हो जाता है। तब उसको आत्मार्थिता है ऐसा कहने में आता है।

‘आनन्द का अंश तो जब स्वभाव का आश्रय ले...’ अर्थात् ज्ञान हो **‘तब प्रकट हो;...’** परन्तु यहाँ ज्ञानी हो उस समय की बात नहीं ली है, त्रिकाल लिया है। त्रिकाल तो कोई ज्ञानी नहीं है। सर्व जीवों को व्यक्तिगत रूप से तो ज्ञानीपना

तो सादि—शुरूआत हो—स—आदि, आदि हो ऐसा होता है। कोई अनादि से ज्ञानी हो, कोई अनादि से अरिहन्त हो, कोई अनादि से सिद्ध हो एक व्यक्ति के रूप में ऐसा कभी नहीं होता। प्रत्येक जीव सिद्ध होने पूर्व पूर्व अवस्था में संसारी होते हैं और उस संसारी अवस्था में पूर्व अवस्था में अनादि से अज्ञानी मिथ्यादृष्टि संसारी होते हैं। कौन? सब भगवंतों की बात चलती है। सिद्धालय में जो अनन्त सिद्ध भगवंत विराजते हैं, उन सब का यह इतिहास है। यद्यपि अच्छा नहीं है, जीव का भूतकाल का इतिहास अच्छा नहीं है। फिर भी अनादि से जैसे सोना खान में अशुद्ध होकर मिट्टी के संयोग में है, वैसे जीव की अवस्था में अशुद्धपना अनादि से है। अकारणपने है।

मुमुक्षु :— यह उसकी शुद्ध होने की रीत है।

पूज्य भाईश्री :— यहाँ से वह स्वभाव ग्रहण कर सकता है। शुद्ध स्वभाव का ग्रहण करके शुद्ध अवस्थारूप परिणामन होने की यहाँ एक जगह है। वह यहाँ बताने में आता है कि यह जगह है, यहाँ से तू शुरू करना। ज्ञान से शुरू करना, ऐसा कहना है। इसमें दूसरी कोई जगह नहीं है।

‘परन्तु चेतना की वर्तमान पर्याय तो अज्ञानी का भी...’ स्पष्ट है न? ‘चेतना की वर्तमान तो अज्ञानी का भी विकसित अंश है; इसलिये यह कहा है कि पूर्ण भगवान आत्मा चेतनागुण्य है।’ छोटे बालक को सौ रुपये की नोट, उसका रंग और उसके अंक उसकी चक्षु इन्द्रिय में जैसा प्रतिबिंब उठे, ऐसा ही बड़े आदमी को गिरे, कि दूसरी तरह उसे दिखाई दे? उसको आसमानी हलके नीला कलर की नोट है वह पीले रंग की या लाल रंग की नहीं दिखती। एक और दो शून्य है वहाँ कहीं मात्र शून्य नहीं दिखते। फिर भी दोनों के बीच अंतर क्या है? कि एक को किमत आती है और एक की किमत नहीं होती है। जानना समान है, परन्तु किमत नहीं आती है, अपना प्रयोजन भासित नहीं होता है। जानना तो समान है, क्योंकि उघाड़ तो समान है। उघाड़ अर्थात् विकास तो समान है। जानने का विकास तो दोनों को समान है, परन्तु

प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है, एक को होती है और दूसरे को नहीं होती।

यहाँ है, आगे एक विषय लिया है। प्रयोजन सम्बन्धि ९३३, ९३४, ९३५ तीनों अच्छे हैं। ‘सिद्ध-सम आत्मा का आंशिक अनुभव होना ही धर्म है। आनंदकंद प्रभु की निर्विकार-शान्ति को धर्म कहते हैं। द्रव्यलिङ्गी साधु होने पर भी धर्म प्रकट नहीं होता, क्योंकि उसका लक्ष्य अप्रयोजनभूत-विषय पर जाता है।’ उसको प्रय है उस पर उसका लक्ष्य नहीं है। क्यों जाता है? ‘मिथ्याश्रद्धाके कारण...’ उसका लक्ष्य अप्रयोजनभूत-विषय में जाता है और प्रयोजनभूत पर उसका लक्ष्य नहीं जाता है।

‘मेरा द्रव्यस्वभाव ज्ञानस्वरूप है। उसमें द्रव्य के अवलंबन से सम्यक्-पर्याय प्रकट होती है। ऐसी प्रयोजनभूत बात को मिथ्यादृष्टि लक्ष्य में नहीं लेता।’ यह अवलंबन का विषय है और इसका अवलंबन लेने की बात है, इस पोंडट को मिथ्यादृष्टि पकड़ता नहीं है। मेरा प्रयोजन यहाँ से सिद्ध होगा उस बात को वह पकड़ता नहीं है।

‘मिथ्यादृष्टि का तो प्रयोजनभूत व अप्रयोजनभूत- दोनों ही प्रकार के पदार्थों को जानने का क्षयोपशम है।’ शास्त्र पढ़े, समझे और समझा सके इस प्रकार से क्षयोपशम काम करे। ‘परन्तु उसका प्रयोजनभूत तत्त्व को जानने में लक्ष्य नहीं जाता....’ उसका लक्ष्य नहीं चौंटता। जिस बात पर लक्ष्य रह जाना चाहिये, कि जिस प्रयोजनभूत का लक्ष्य रहने से सर्व ओर उपयोग जाने पर भी उसको गौण हो जाय, लक्ष्य न रहे और गौण हो जाय। जैसे ट्राफिक में पूरा ट्राफिक ज्ञात होता है फिर भी लक्ष्य नहीं रहता। उसको ‘ऐसा दर्शनमोह के कारण है।’ उसको प्रयोजनभूत तत्त्व जानने में लक्ष्य नहीं जाता। उसका कारण दर्शनमोह है। ‘आखिर क्षयोपशमज्ञान तो क्षयोपशमज्ञान ही है।’ स्पष्ट परन्तु ‘विपरीतश्रद्धा के कारण अज्ञानी का ज्ञान, मिथ्याज्ञान है।’

(प्रवचन का शेष अंश अगले अंक में)।



**पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा
साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र**

(३८)

बंबई

१३-४-१९६३

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

धर्मस्नेही शुद्धात्म सत्कार।

मैं एक सप्ताह से बंबई आया हूँ।

सौराष्ट्र में मेरा फिलहाल जाना नहीं हो सकेगा। अभी तो कलकत्ता ही रहना होता दिखता है। आपका उधर कोई कार्यवश आना होवे तो मैं आशा करता हूँ मैं अवश्य आप से मिल सकूँगा। आप आनेकी सूचना कलकत्ता लिख देवें। यदि मेरा अजमेर, देहलीकी तरफ आना होगा तो मैं अवश्य आपसे मिलूँगा। बाह्यनिमित्त व निमित्त आश्रित निजभाव से कोई भी लाभ नहीं होता है। - यह सिद्धांत लक्ष्य में रखकर, निज त्रिकाली अपने स्थित स्वभाव में ही परिणति स्थित होती जावे, ऐसी अनुभूति प्राप्त होना श्रेयस्कर है। अभी जल्दी में पत्र बंध करना पड़ रहा है।

आपके वात्सल्ययुक्त अनुराग भरे पत्र को देखकर कुछ धार्मिक विषयपर भी लिखता, परंतु आज जाने के पहले भी जल्दी है। अतः फिर कभी लिखना हो सकेगा।

- धर्मस्नेही निहालचंद्र

(३९)

कलकत्ता

२०-४-१९६३

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मारथी... शुद्धात्म सत्कार।

पत्र ता.१७-४ का आपका मिला। अलौकिक पूज्य गुरुदेव के दर्शनार्थ आप जोरावरनगर, दहेगाँव आदि जा रहे हैं, जानकर चित्त प्रसन्न हुआ। दहेगाँव के श्री भीखाभाई मुझे मिले। वहाँ पहुँचने वास्ते उनका आग्रह भी था। पुण्ययोग से ही श्री गुरुदेव के सान्निध्य में रहना होता है।

‘निःशंक निर्णय के लिये किस प्रकार रटन, पुरुषार्थ आदि होना चाहिए’ लिखा, सो अपने अस्तित्व की यथार्थ समझ में सब ही बातें गर्भित हैं। प्रमाणज्ञान का विषय नित्य व अनित्य अथवा त्रिकाली ध्रुव व क्षणिक परिणामी वस्तु एक ही साथ मैं हूँ। दोनों प्रकार का अनुभव एक ही समय होनेपर निःशंकता हो जाती है। संसारी (अज्ञानी) जीव को कर्तृत्व-भोक्तृत्वरूप मात्र परिणाम के वेदन की प्रसिद्धि है, उस ही समय त्रिकालीरूप मात्र परिणाम के वेदन की प्रसिद्धि है, उस ही समय त्रिकालीरूप स्व अस्तित्व

की नहीं।

परिणाममें से अस्तित्वपने की श्रद्धा हटाकर, त्रिकाली ज्ञानानंद आदि अनंत गुणों के देहाकार असंख्यात प्रदेशी निजपने में श्रद्धा की पर्याय को एकाकार व्यापक करते ही नित्यपने का, निज अस्तित्वपने का प्रति समय अनुभव होता है।

‘अपरिणामी, नित्य, त्रिकाली, ध्रुव बिंब मैं हूँ’ क्षणिक परिणाम नहीं-यह श्रद्धा का विषय है। श्रद्धा एक ही समय में पूर्ण त्रिकाली को पकड़कर अभेद हो जाती है। यहाँ अस्तित्व की स्थापना होते ही ‘मैं परिणाम के साथ नहीं परिणमता। परिणाम का कर्ता परिणाम ही है, ‘मैं तो अपरिणामी वर्तमान में ही परिपूर्ण हूँ। वर्तमान से ही मुझे कुछ करना-कराना नहीं है। रटन, पुरुषार्थ, ज्ञान आदि सब परिणाम हैं। इनसे मुझे लाभ-हानि नहीं। मेरी अपेक्षा से यह स्वयं होते हैं। ‘मैं अविचल हूँ। इन परिणामों से विचलित नहीं होता। इनसे पृथक् व अधिक हूँ। अपेक्षा से मेरे गर्भ में होते हैं। पर ‘मैं’ इनमें एकमेक नहीं होता। दर्पण का त्रिकाली दल, एक समय की दर्पणाकार पर्याय से भिन्न ही रहता है। दोनों कार्य एक समय में है। यदि दल एक समय के आकार-पर्याय में आ जाये तो त्रिकालीपने का नाश हो जाता है। अतः त्रिकाली ध्रुव नित्य वस्तु में - अपने अस्तित्वपने में श्रद्धा की व्यापकता करते ही सब कार्य सहज स्वभावरूप अनुभव होने लगता है। वर्तमानसे ही मुझे कुछ नहीं करना है, ऐसे ‘मैं-पने’ की यथार्थ अभेद प्रतीति होते ही चारित्र-पुरुषार्थ आदि के सब परिणाम सहज ही ‘मैं त्रिकाली’का अनुसरण करने लगते हैं व शुद्ध होने लगते हैं। परिणामों में उलट-फेर करने की दृष्टि असम्यक् है। इस क्रिया से जब ही हट सकते हैं कि इनसे भिन्न अपरिणामी वस्तु में - निश्चलरूप वस्तु में निश्चल रहें। निश्चय स्व-सत् का संग होना ही पूज्य सद्गुरुदेव के संग का फल होना चाहिए। वर्तमान में ही परिपूर्ण हूँ तो वर्तमानसे ही किसीसे भी लाभ व नुकसान नहीं है।

- धर्मस्नेही निहालचंद्र

स्वानुभूतिप्रकाश पत्रिका सम्बन्धित

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रही स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिकाके एड्रेस सम्बन्धित किसी भी प्रकारका फेरफार, नाम डलवाना, कटवाना इत्यादिके लिये निम्नलिखित नंबर पर अपना ग्राहक क्रमांक लिखकर वोट्स एप करनेकी विनती। प्रशांतभाई जैन, मो. ९३७७९०४८६८

प्रकाशन-कार्य गतिविधि

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा ‘स्वानुभूतिदर्शन’ ग्रन्थ पर हुए प्रवचनों को कम्प्यूटर में फिड़ करने का कार्य चल रहा है। पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की जन्मजयंति प्रसंग पर आत्मावलोकन ग्रन्थ पर हुए प्रवचनों के दो भाग एवं चिद्विलास पर हुए प्रवचनों का एक भाग प्रकाशित करने की भावना है। तत्पश्चात् राज हृदय भाग-३ एवं भाग-४ (हिन्दी), पूज्य भाईश्री की जन्म जयंति प्रसंग पर प्रकाशित करने की भावना है। संभवतः परमागमसार पर हुए प्रवचनों के दो भाग को समयनानुकूल प्रकाशित होने की संभावना है।

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी.२ A



प्रश्न :- सहज ही उपयोग पलटता है और जानने में भेद का लक्ष्य छूट जाता है।

समाधान :- भेद का लक्ष्य छूट जाता है। जानने में भेद पर लक्ष्य था वह छूट जाता है। राग छूटे तो वह भेदवाला उपयोग पलटता है। जबतक राग बाहर है तबतक उपयोग बाहर ही जाता है। उसका राग बाहरसे मन्द पड़े तो वह अन्दर जाता है। इसलिये स्वयं की ओर उपयोग को लीन करता है, स्थिर करता है। तो विकल्प छूटकर उसे निर्विकल्प दशा होती है।

प्रश्न :- उपयोग स्थिर करता है वहाँ उसका अभिप्राय राग छोड़ने का है।

समाधान :- अभिप्राय राग छोड़ने का है।

प्रश्न :- फिर ज्ञान स्वसन्मुख होता है तब भेद का लक्ष्य छूट जाता है।

समाधान :- भेद का लक्ष्य सहज ही छूट जाता है। आचार्यदेव कहते हैं न, बहुत कहा, बहुत बात हो गई, बस, अब बस होओ। अन्दर स्वरूप में लीन होओ। जो जानने की ओर उपयोग था उसके साथ राग आता है इसलिये खण्ड खण्ड होता है। उससे आकूलता होती है इसलिये स्वरूप में स्थिर होता है।

प्रश्न :- निर्विकल्प अनुभव के समय ऐसे ले सकते हैं कि ज्ञान का अवलम्बन तो ज्ञायक का ही है, लेकिन द्रव्य-गुण-पर्याय आदि जानना, यह अवलम्बन रखकर सब जानता है।

समाधान :- श्रद्धा ने आश्रय द्रव्य का लिया है, वैसा ज्ञान ने भी आश्रय लिया है। लेकिन उसका कार्य सब जानने का है। ज्ञान के आश्रय में भी द्रव्य है और दृष्टि के आश्रय में भी द्रव्य है। उसमें लीनता भी (है), जो लीन होता है वह स्वरूप का आश्रय लेकर लीनता करता है। लेकिन ज्ञान का स्वभाव जानने का है। यदि जानने का स्वभाव नहीं हो तो वेदन को जाने कौन? स्वानुभूति को जाने कौन? स्वानुभूति खुद स्वयं को नहीं जानती, ज्ञान उसे जानता है। ज्ञान सब को जानता है। उसका जानने का स्वभाव है। ज्ञान स्वयं द्रव्य को जानता है, द्रव्य का आश्रय करता है, ज्ञान गुणों को जानता है, ज्ञान पर्यायों का जानता है, ज्ञान सबको जानता है। निर्विकल्प दशा में से बाहर आता है तो भी स्वानुभूति हुई वह सब ज्ञान जानता है, विवेक करता है। बाहर आने के बाद भी किस प्रकार के विचार और किस प्रकार अन्दर स्वरूप में लीन हुआ, वह सब ज्ञान जानता है। दृष्टि एक आश्रय करती है, ज्ञान भी आश्रय करता है।

जब तक अन्दर में भेदज्ञान और दृष्टि का आश्रय जोरदार नहीं होता, उसका आश्रय दृष्टि में जोरदार नहीं होता तबतक वह ज्ञान में भी जोरदार नहीं होता। और तबतक स्थिर नहीं हो सकता। अन्दर भेदज्ञान हो कि मैं इन सब रागसे, इन सब विल्पोसे भिन्न-न्यारा ज्ञायक हूँ, इस प्रकार उसे अन्दर से श्रद्धा का जोर आये कि मैं एक ज्ञायक हूँ, तो उससे भिन्न हो और स्वरूप में स्थिर होने का प्रयत्न करे। उसे प्रयोजन का, कितनों को ही अन्दर इतनी लगनी लगती है कि मूल प्रयोजनभूत जान लिया, बस, अब

स्वरूप में स्थिर हो जाना है। एक आत्मा का प्रयोजन साधना है। इसलिये आत्मा का आश्रय लेकर स्वरूप में स्थिर होने का प्रयत्न करे, उपयोग बाहर जाता हो उसे अंतर में लाता है। उसमें यदि उसका पुरुषार्थ यथार्थ हो और यदि यथार्थ हो तो उसे विकल्प छूटकर निर्विकल्प दशा की प्राप्ति होती है। लेकिन वह धारावाही, शास्त्र में आता है न? छः महिने ऐसा धारावाही अभ्यास तू कर, दृष्टि का आश्रय करके उस प्रकार की भेदज्ञान की दशा अन्दर से प्राप्त कर और यदि सहजरूप से तेरी धारा हो तो अन्दर निर्विकल्प दशा और स्वानुभूति हुए बिना रहेगी नहीं, ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। उपयोग अन्तर में लाने को आचार्यदेव कहते हैं, मति-श्रुत का उपयोग, अर्थात् उसका राग छूटे तो उपयोग अन्दर आये न? राग छूटे बिना उपयोग अन्दर आता नहीं।



(श्रीमद् राजचन्द्र पत्रांक)

कहते हैं कि सत्पुरुषका कहा हुआ वचन, उसका उपदेश सुना नहीं है, अथवा सम्यक्प्रकारसे उसका पालन नहीं किया है। और इसे ही हमने मुनियोंकी सामायिक (आत्मस्वरूपकी प्राप्ति) कहा है।”

सुधर्मास्वामी जंबुस्वामीको उपदेश देते हैं कि सारे जगतका जिन्होंने दर्शन किया है, ऐसा महावीर भगवानने हमें इस प्रकार कहा है-“गुरुके अधीन होकर आचरण करनेवाले अनन्त पुरुषोंने मार्ग पाकर मोक्ष प्राप्त किया है।”

एक इस स्थलमें नहीं, परन्तु सर्व स्थलों और सर्व शास्त्रोंमें यही बात कहनेका लक्ष्य है।

आणाए धम्मो आणाए तवो।

आज्ञाका आराधन ही धर्म और आज्ञाका आराधन ही तप है। (आचारांग सूत्र)

सब जगह यही महापुरुषोंके कहनेका लक्ष्य है। यह लक्ष्य जीवकी समझमें नहीं आया। इसके कारणोंमें सबसे प्रधान कारण स्वच्छंद है और जिसने स्वच्छंदको मंद किया है, ऐसे पुरुषके लिये प्रतिबद्धता (लोकसम्बन्धी बंधन, स्वजनकुटुम्ब बंधन, देहाभिमानरूप बंधन, संकल्प-विकल्परूप बन्धन) इत्यादि बन्धनको दूर करनेका सर्वोत्तम उपाय जो कोई हो उसका इसपरसे आप विचार कीजिये; और इसे विचारते हुए जो कुछ योग्य लगे वह हमें पूछिये; और इस मार्गसे यदि कुछ योग्यता प्राप्त करेंगे तो चाहे जहाँसे भी उपशम मिल जायेगा। उपशम मिले और जिसकी आज्ञाका आराधन करें ऐसे पुरुषकी खोजमें रहिये।

बाकी दूसरे सभी साधन बादमें करने योग्य है। इसके सिवाय दूसरा कोई मोक्षमार्ग विचारने पर प्रतीत नहीं होगा। (विकल्पसे) प्रतीत हो तो बताइयेगा ताकि जो कुछ योग्य हो वह बताया जा सकें।



ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (मई-२०१९) का शुल्क वंदनाबहेन रणधीरभाई घोषाल, कोलकाटा के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

१९३

बंबई, पोष वदी २, सोम, १९४७

सुज्ञ भाई,

हमें सभी मुमुक्षुओंका दासत्व प्रिय है। जिससे उन्होंने जो जो विज्ञापन किया है, वह सब हमने पढ़ा है। यथायोग्य अवसर प्राप्त होनेपर इस विषयमें उत्तर लिखा जा सकता है; तथा अभी आश्रम (जो स्थिति है वह स्थिति) छोड़ देनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारे समागमकी जो आवश्यकता बतायी वह अवश्य हितकारी है। तथापि अभी उस दशाका योग आना शक्य नहीं है। यहाँ निरन्तर आनन्द है। वहाँ धर्मयोगकी वृद्धि करनेके लिये सभीसे विनती है।



वि. रा.



१९४

बंबई, पोष, १९४७

जीवको मार्ग मिला नहीं है, इसका क्या कारण?

इसका वारंवार विचार कर, योग्य लगे तब साथका पत्र पढ़ें।

अभी विशेष लिख सकनेकी या बतलानेकी दशा नहीं है, तो भी एक मात्र आपकी मनोवृत्ति कुछ दुःखित होनेसे रुके इसलिये यथावसर जो कुछ योग्य लगा सो लिखा है।

हमें लगता है कि मार्ग सरल है, परंतु प्राप्तिका योग मिलना दुर्लभ है।

सत्स्वरूपको अभेदभावसे और अनन्य भक्तिसे नमोनमः

जो निरंतर भाव-अप्रतिबद्धतासे विचरते हैं ऐसे ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदके प्रति अचल प्रेम हुए बिना और सम्यक्प्रतीति आये बिना सत्स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, और आने पर अवश्य वह मुमुक्षु, जिसके चरणारविंदकी उसने सेवा की है, उसकी दशाको पाता है। सर्व ज्ञानियोंने इस मार्गका सेवन किया है, सेवन करते हैं और सेवन करेंगे। ज्ञानप्राप्ति इससे हमें हुई थी, वर्तमानमें इसी मार्गसे होती है और अनागतकालमें भी ज्ञानप्राप्तिका यही मार्ग है। सर्व शास्त्रोंका बोध-लक्ष्य देखा जाये तो यही है। और जो कोई भी प्राणी छूटना चाहता है उसे अखंड वृत्तिसे इसी मार्गका आराधन करना चाहिये। इस मार्गका आराधन किये बिना जीवने अनादि कालसे परिभ्रमण किया है। जब तक जीवको स्वच्छंदरूपी अंधत्व है, तब तक इस मार्गका दर्शन नहीं होता। (अंधत्व दूर होनेके लिये) जीवको इस मार्गका विचार करना चाहिये, दृढ़ मोक्षेच्छा करनी चाहिये; इस विचारमें अप्रमत्त रहना चाहिये, तो मार्गकी प्राप्ति होकर अंधत्व दूर होता है, यह निःशंक मानें। अनादिकालसे जीव उलटे मार्गपर चला है। यद्यपि उसने जप, तप, शास्त्राध्ययन इत्यादि अनंतबार किया है; तथापि जो कुछ भी अवश्य करने योग्य था, वह उसने किया नहीं है; जो हमने पहले ही बताया है।

सूयगडांगसूत्रमें ऋषभदेवजी भगवानने जहाँ अट्टानवें पुत्रोंको उपदेश दिया है, मोक्षमार्गपर चढ़ाया है वहाँ यही उपदेश किया है-

“हे आयुष्यमानों! इस जीवने सब कुछ किया है एक इसके बिना, वह क्या? तो कि निश्चयपूर्वक

(अनुसंधान पृष्ठ सं.१७ पर...)

पूज्य श्री सोगानीजी की १०८ वीं जन्मजयंती पर कोटीकोटी वंदन
 धन्य गुरु ! धन्य शिष्य !
 पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी के विषय में
 सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री के प्रमोदपूर्ण हृदयोद्गार !



उनकी जो सत्संगकी भावना, उपकारी सत्पुरुषके प्रति भक्ति, उनकी जो गृहस्थादि दशामें उदासीनता, और उनकी जो दृष्टिकी, दृष्टि में तत्त्व की पकड़-ये चार पहलू उनके वचनोंमेंसे बहुत अच्छी तरह निकलते हैं! चारोंके चारों पहलू इतनी अच्छी तरह निकलते हैं कि वह आत्मा कैसा था वह तुरंत पता पड़ जाय ऐसी बात है। चारों बाजुसे यदि उसके बारेमें विचार किया जाय तो उनके शब्ददेह परसे उनके आत्मा का सीधा मूल्यांकन हो जाये ऐसा है। ऐसा सुंदर विषय है।

(-पूज्य भाईश्री शशीभाई)